XI समग्र मूल्यांकन

11.1 एक कार्य-कुशल एवं सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देने, वित्तीय प्रवाहों की मध्यस्थता करने, भुगतान प्रणाली में सहायता करने तथा मौद्रिक नीति के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बैंक उधार देने में सूचना की समस्याओं तथा प्रोत्साहन समस्याओं से उद्भूत उधारकर्ताओं के नैतिक अवरोधपूर्ण व्यवहार से निपटने में प्रभावी होते हैं। बैंकिंग क्षेत्र की कार्य-कुशल कार्य प्रणाली का परिणाम संसाधनों के और अधिक कारगर आवंटन की दृष्टि से प्रचुर लाभ के रूप में सामने आता है। बैंकों ने जर्मनी और जापान जैसे कुछेक देशों तथा भारत सहित अधिकांश उभरती बाज़ार-उन्मुख अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संवृद्धि का वित्तीयन करने के अलावा, बैंकिंग प्रणाली वह वाहक नली होती है जिसके माध्यम से शेष वित्तीय प्रणाली में मौद्रिक नीति के स्पंदनों को संचारित किया जाता है। बैंक भुगतान और निपटान प्रणालियों के मुख्य सहभागी भी होते हैं । एक सुरक्षित, निरापद और कार्य-कुशल भुगतान एवं संतुलन प्रणाली वित्तीय प्रणाली की स्थिरता की महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा होती है । इस प्रकार, बैंक आर्थिक संवृद्धि और मूल्य एवं वित्तीय दोनों ही प्रकार की स्थिरता के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

11.2 उभरती बाज़ार-उन्मुख अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास में बैंकों द्वारा निभाई जाने वाली एक महत्त्वपूर्ण भूमिका बचतकर्ताओं की आश्वस्त आय हेतु उत्सुकता; निधियों की नकद उपलब्धता और निरापदता, क्योंकि बैंकिंग संस्थाओं को सरकार की या तो अव्यक्त अथवा सुनिश्चित गारंटी प्राप्त होती है; तथा वित्तीय जोखिमों को नियंत्रित करने में बचतकर्ताओं की अपर्याप्त क्षमता जैसे कतिपय कारकों से उद्भूत होती है । बैंक उभरते बाज़ारों में विशिष्ट स्थिति रखते हैं, क्योंकि अन्य वित्तीय मध्यवर्तियों और वित्तीय बाज़ारों के विकास में वे अग्रणी भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा, कॉरपोरेट और अन्य खण्डों को सुविकसित इक्विटी और बांड बाज़ारों के अभाव के कारण उनकी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु अधिकाधिक रूप से बैंकिंग क्षेत्र पर ही निर्भर होना पड़ता है।

11.3 पिछले वर्षों में, विश्व भर की बैंकिंग प्रणालियों में अविनियमन, प्रौद्योगिकीय नवोन्मेषों और वैश्वीकरण जैसे विविध कारकों का सहारा पा कर महत्त्वपूर्ण रूपान्तरण हुए हैं। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप अधिक प्रतिस्पर्धात्मक दबाव निर्मित हुए हैं। अतएव बैंक नवोन्मेषी उत्पादों की शुरुआत कर रहे हैं, आय के अपेक्षाकृत नये स्रोत तलाश रहे हैं, गैर-परंपरागत क्रियाकलापों के रूप में विविधीकरण अपना रहे हैं तथा पूंजी में बचत कर रहे हैं। इन सभी घटनाओं ने कतिपय विनियामक एवं पर्यवेक्षी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं।

11.4 भारत में बैंकिंग प्रणाली, जैसी कि पिछले अध्यायों में चर्चा की जा चुकी है, पिछले वर्षों में विभिन्न चरणों से गुजरी है । सामाजिक नियंत्रण, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के उधारों से संबंधित लक्ष्यों और 1960 वाले दशक के उत्तरार्ध से भारतीय रिज़र्व बैंक/सरकार द्वारा की गई विविध प्रकार की पहलकदमियों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा नेटवर्क और सेवाओं के विस्तार में महत्त्वपूर्ण फैलाव आया। इससे बैंकिंग की आदत डलवाने और बचतों के विशाल संग्रहण में सहायता प्राप्त हुई। इसके अलावा, भारत में बैंकिंग प्रणाली ने देश के उद्यमशीलता आधार को व्यापक बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए विविधीकरण और विकास अन्य बातों के साथ-साथ बैंकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों के वित्तीयन में निभाई गई सक्रिय भूमिका के कारण ही संभव हुए। हालांकि, जैसा कि कम लाभप्रदता, भारी अनर्जक आस्तियों, अल्प पूंजीगत आधार तथा न्यून परिचालन कार्य-कुशलता से पता चलता है, 1990 वाले दशक के प्रारंभिक काल तक बैंकिंग क्षेत्र की वित्तीय स्थिति कमज़ोर हो गई। अतएव बैंकिंग क्षेत्र में व्यापक सुधार लागू किए गए। बैंकिंग सुधारों के प्रति अपनाए गए सक्षम एवं आनुक्रमिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप पिछले वर्षों में एक सुदृढ़ एवं लचीली बैंकिंग प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ।

11.5 अब भारतीय बैंकिंग प्रणाली के समक्ष कतिपय नयी चुनौतियां उपस्थित हो गई हैं। बैंकों के लिए वृद्धिशील अर्थव्यवस्था की वित्तीयन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशाल संसाधन जुटाने आवश्यक होते हैं। बैंकों को बासेल II, जो 31 मार्च 2009 से पूर्ण रूप से लागू हो जाएगा, के कार्यान्वयन की चुनौती से भी जूझना पड़ रहा है । बदले हुए परिचालनात्मक परिवेश ने जोखिम प्रबंधन परंपराओं के सुदृढ़ीकरण को भी आवश्यक बना दिया है। बैंकों के लिए यह भी आवश्यक हो गया है कि वे ऐसे समय में पर्याप्त सुरक्षोपाय लागू करें जब देश पूंजीगत खाते की अपेक्षाकृत पूर्ण परिवर्तनीयता की दिशा में क्रमिक रूप से आगे बढ़ रहा है। बैंकों और बैंकेतर संस्थाओं के बीच भेद की अस्पष्टता, वित्तीय संगुटों के उद्भव तथा कतिपय नवोन्मेषी वित्तीय उत्पादों की शुरुआत ने भी कतिपय विनियामक एवं पर्यवेक्षी चुनौतियां उपस्थित कर दी हैं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण चुनौती है - अब तक वित्तीय रूप से वंचित लोगों को बैंकिंग के दायरे में लाना। इस अंतिम अध्याय में पिछले अध्यायों में समाविष्ट विश्लेषण के प्रमुख निष्कर्षों, जिनमें अब तक हुई प्रगति और भावी राह दोनों ही शामिल हैं, का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

भारत में बैंकिंग का विकास

11.6 भारत में संयुक्त स्टॉक किस्म की वाणिज्यिक बैंकिंग की शुरुआत 18वीं सदी के प्रारंभिक दिनों में पाई जा सकती है । भारत में सहकारी बैंकिंग आंदोलन के उद्भव के प्रमाण 19वीं सदी के अंतिम दशक में पाए

जा सकते हैं । बैंकों का पहला औपचारिक विनियमन था - 1850 में कंपनी अधिनियम का अधिनियमन । स्वतंत्रता के समय तक की यह अवधि भारतीय बैंकों के लिए एक कठिन समय था। अल्प-पूंजी आधार वाले काफी बड़ी संख्या में बैंकों का ताता लग गया। इस अवधि में दो विश्व युद्ध हुए और 1930 वाले दशक की भयंकर मंदी भी आई। इस अवधि में कई बैंक विफल (बंद) हो गए। इसमें वैश्विक कारकों के अलावा कतिपय अन्य कारकों की भी भूमिका रही है। बैंकों की विफलता से आंशिक रूप से निपटने के लिए 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना की गई।

11.7 स्वतंत्रता के समय संपूर्ण बैंकिंग क्षेत्र निजी क्षेत्र में था । स्वतंत्रता के प्रारंभिक दिनों वाले चरण ने बैंकिंग परिदृश्य में तीन मुख्य चिंताओं को जन्म दिया (i) बैंकों की विफलता ने बैंकिंग क्षेत्र की सुदृढ़ता और स्थिरता के बारे में चिंताएं पैदा कर दी थीं; (ii) भारी मात्रा में संसाधन कुछेक व्यावसायिक घरानों में ही संकेन्द्रित थे, और (iii) कुल बैंक ऋण में कृषि का अंश अत्यल्प था। इस अवधि की महत्त्वपूर्ण घटना थी - बैंककारी विनियमन अधिनियम का अधिनियमन। यद्यपि विफल होने वाले बैंकों की संख्या में कमी आ गई, तथापि स्वतंत्रता के बाद भी बैंकों के विफल (बंद) होने का क्रम जारी रहा। 1960 वाले दशक के प्रारंभिक काल में बैंकिंग कंपनी अधिनियम, 1949 में संशोधन किया गया, जिसमें रिज़र्व बैंक को बैंकों का अनिवार्य समामेलन कराने का अधिकार प्रदान किया गया। इसके फलस्वरूप कमज़ोर बैंक (जिनमें से अधिकांश गैर-अनुसूचित थे), समामेलनों/परिसमापनों के माध्यम से समाप्त कर दिए गए। गैर-अनुसूचित बैंकों की संख्या 1951 के 474 से तीव्रतापूर्वक घटकर 1967 में 20 रह गई। बैंकों की शाखाओं की संख्या 1952 के 4,061 से बढ़ कर 1967 में 6,985 हो गई। तथापि, ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का स्वरूप वैसा ही बना रहा। कुल बैंक ऋणों में कृषि का अंश 1951 और 1967 की अवधि के बीच व्यापक तौर पर उतना ही बना रहा। इस प्रकार, स्वतंत्रता के समय विद्यमान तीन महत्त्वपूर्ण मुद्दों में से दो मुदे स्वतंत्रता के 20 वर्ष बाद भी चिन्ता पैदा करते रहे।

11.8 भारत में बैंकिंग के अगले चरण की शुरुआत 1967 में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण के साथ हुई, जिसके द्वारा किसी बैंक के निदेशक मंडल के 51 प्रतिशत सदस्यों में ऐसे व्यक्तियों का समावेश होना था, जिन्हें लेखा शाखा, कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था, बैंकिंग सहकारिता, अर्थशास्त्र, वित्तीय एवं लघु स्तरीय उद्योग जैसे विषयों में से किसी एक या उससे अधिक में विशेष जानकारी या विशेष अनुभव प्राप्त हो। तथापि, सामाजिक नियंत्रण के प्रयोग से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हुए। 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। कालान्तर में, 1980 में छह और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इसने भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के एक बड़े खण्ड को सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण के अधीन कर दिया। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद शाखा नेटवर्क का ज़ोरदार विस्तार हुआ। फलतः प्रति बैंक कार्यालय औसत आबादी 1951 के लगभग 1,36,000 से घटकर 1969 में 65,000 हो गई और दिसम्बर 1990 के अंत में यह और घटकर 14,000 हो गई। नयी शाखाओं में से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गईं। इसके फलस्वरूप, कुल शाखाओं में ग्रामीण शाखाओं का अंश जून 1969 के लगभग 18 प्रतिशत से बढ़कर दिसम्बर 1990 के अंत में लगभग 58 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया। 1969 और 1980 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के अलावा कतिपय अन्य नियंत्रणों का भी प्रयोग किया गया जैसे कि प्राथमिकता क्षेत्र के उधार और विभेदक ब्याज दर योजना। कॉरपोरेट कंपनियों के कार्यशील पूंजी वित्तीयन से संबंधित मानदंड भी लागू किए गए। बहु-विध उद्देश्यों का प्रवर्तन करते समय जमा और उधार दर ढांचा अत्यधिक जटिल हो गया। परंपरागत रूप से अधिक स्तरों पर पहुंचने के लिए आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) भी बारंबार बढ़ाए गए। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप, बैंकों की लाभप्रदता कम हो गई, उनकी आस्ति गुणवत्ता में कमी आ गई तथा उनकी पूंजीगत स्थिति कमजोर हो गई। पर्याप्त प्रतिस्पर्धा के अभाव के परिणामस्वरूप कार्य-कुशलता और लाभप्रदता में गिरावट आ गई, बैंकिंग प्रणाली के कार्य-निष्पादन पर विविध प्रकार के उपायों के प्रतिकूल प्रभाव को महसूस करते हुए 1980 वाले दशक के उत्तरार्ध में उक्त क्षेत्र को उदारीकृत बनाने के लिए कुछेक प्रयास किए गए।

11.9 अगले चरण, जो 1991-92 में आरंभ हुआ, की मुख्य चुनौती बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने की थी। इस उद्देश्य के लिए विवेकसम्मत मानदंडों को चरणबद्ध विधि से लागू किया गया। निजी क्षेत्र के नये बैंकों को प्रवेश की अनुमति देते हुए विदेशी बैंकों की बढ़ी हुई उपस्थिति तथा सरकारी क्षेत्र के बैंकों को परिचालनात्मक लोच प्रदान करते हुए स्पर्धात्मक स्थितियां निर्मित किए जाने के प्रयास भी किए गए। उदारीकृत परिवेश में, बैंकों को कतिपय जोखिमों का सामना करना पड़ रहा है। अतएव, पर्यवेक्षी प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने के भी प्रयास किए गए। पहले उप-चरण की समाप्ति (1997-98 तक) पर बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता में महत्त्वपूर्ण रूप से सुधार हुआ। बैंकों के पूंजी पर्याप्तता अनुपात और आस्ति की गुणवत्ता में भी सुधार आया। तथापि, बैंकों के अनर्जक ऋण अब भी अन्तरराष्ट्रीय मानकों की तुलना में अत्यधिक थे। यद्यपि, कुल मिलाकर बैंकिंग क्षेत्र का पूंजी पर्याप्तता अनुपात विनिर्दिष्ट मानदंड से अधिक था, पर कुछ बैंक पूंजी पर्याप्तता मानदंडों को पूरा नहीं कर सके। इस चरण में प्रतिस्पर्धा भी अनुच्चरित बनी रही। तथापि, कुछेक बैंकों ने जोखिम विरुचि की प्रवृत्ति दर्शाई, जिसके फलस्वरूप ऋण-संवृद्धि में उल्लेखनीय रूप से मंदी आ गई।

11.10 दूसरा उप-चरण 1998-99 में प्रारंभ हुआ। 1998 के प्रारंभिक दिनों में विवेकसम्मत मानदंडों को अन्तरराष्ट्रीय उत्तम परंपराओं के अनुरूप सुदृढ़ किए जाने की आवश्यकता महसूस की गई। 1990 वाले दशक के उत्तरार्ध में पूर्व एशियाई संकट ने कमज़ोर बैंकिंग क्षेत्र द्वारा वास्तविक अर्थव्यवस्था के समक्ष उपस्थित किए जाने वाले जोखिमों को रेखांकित कर दिया था। हालांकि, विवेकसम्मत मानदंडों को सुदृढ़ बनाए जाते समय आवश्यकता इस बात की थी कि यह सुनिश्चित किया जाए कि जोखिम के प्रति विरुचि की यह समस्या बढ़ने न पाए। अतः, बैंकों को उनकी विगत प्राप्य राशियों को वसूल करने में समर्थ बनाने हेतु उपयुक्त संस्थागत

व्यवस्थाएं लागू की गईं। इन उपायों का सकारात्मक प्रभाव हुआ, क्योंकि बैंक अनर्जक आस्तियों में उलझी भारी निधियां वसूल करने में सफल हुए। चूंकि आस्ति की गुणवत्ता में सुधार होने लगा, बैंकों ने उनके ऋण संविभाग को विस्तारित करना आरंभ कर दिया । इस चरण में प्रतिस्पर्धा भी गहन हो गई। हालांकि, तब भी बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता बढ़ गई, जो अन्य बातों के साथ-साथ वर्धित ऋण की मात्राओं, आस्ति की गुणवत्ता में सुधार और विविधीकरण के कारण संभव हुई। बैंकिंग क्षेत्र की पूंजी की स्थिति में भी महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ोत्तरी हुई। अतः इस चरण में बैंकों की वित्तीय स्थिति और सुदृढ़ता में उल्लेखनीय रूप से सुधार हुआ।

11.11 इस चरण में एक और महत्त्वपूर्ण चुनौती थी, कृषि और लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र को ऋण प्रवाह बढ़ाना, जिसमें 1990 वाले दशक में कमी आ गई थी। इसलिए कृषि और लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र को ऋण प्रवाह बढ़ाने हेतु सहयोजित प्रयास किए गए। यद्यपि पिछले वर्षों में बैंकिंग क्षेत्र ने महत्त्वपूर्ण प्रगति दर्ज की, तथापि, जनसंख्या के एक विशाल वर्ग की अब भी बैंकिंग एवं अन्य वित्तीय सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच देखने में आती है। अतएव, बैंकिंग प्रणाली की पहुँच को, ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में विस्तारित करने हेतु पहलकदमियां की जा रही हैं।

11.12 बैंकों में कॉरपोरेट अभिशासन परम्पराओं के संबंध में भारतीय संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण मुद्दे उभरे। ये मुद्दे स्वामित्व के संकेन्द्रण तथा बैंकों का नियंत्रण करने वाले प्रबंधन की गुणवत्ता से संबंधित थे । निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व और अभिशासन संबंधी दिशानिर्देश 2005 में जारी किए गए थे। यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्वामित्व सु-विविधीकृत हो और यह कि बैंकों के निदेशक और मालिक 'उपयुक्त और उचित' मानदंड का पालन करते हों, उपयुक्त उपाय आरंभ किए गए।

11.13 वर्ष 2000 के प्रारंभिक दिनों में बहु-राज्यीय सहकारी बैंक से भारी मात्रा में आकस्मिक आहरण के कारण शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में विश्वास में कमी आ गई थी। शहरी सहकारी बैंकों में विश्वास को बहाल करने तथा दोहरे नियंत्रण की समस्या पर काबू पाने के उद्देश्य से अब रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों के साथ नियमित एवं व्यवस्थित परामर्श की प्रणाली स्थापित कर दी है। उसने शहरी सहकारी बैंकों में कार्य बल (टैफकब) का गठन करने हेतु राज्य सरकारों के साथ एक समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित किया है, जिनसे यह अपेक्षित है कि वे उनके संबंधित राज्यों में शहरी सहकारी बैंकों में उठने वाले किसी भी मुद्दे का सक्रियता से निराकरण करेंगे। अब तक 19 राज्यों ने रिज़र्व बैंक के साथ समझौता-ज्ञापन हस्ताक्षरित किए हैं तथा शहरी सहकारी बैंकों से संबंधित कार्य बलों के गठन का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। यह व्यवस्था शहरी सहकारी बैंकों में विश्वास को बहाल करने में सहायक सिद्ध हुई है। इस चरण में जैसा कि शाखाओं के कंप्यूटरीकरण, एटीएमों की संख्या में वृद्धि तथा निधियों के अंतरण की इलेक्ट्रॉनिक विधियों की शुरुआत (तत्काल सकल भुगतान प्रणाली और राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक निधि अंतरण) से पता चलता है, प्रौद्योगिकी के उपयोग में भी महत्त्वपूर्ण रूप से वृद्धि हो रही है।

संसाधन संग्रहण प्रबंधन

11.14 अर्थव्यवस्था के भारी अधिशेष वाले क्षेत्र, घरेलू क्षेत्र से जमा संग्रहण के माध्यम से बचत दरों को बढ़ाते हुए संवृद्धि की प्रक्रिया को समर्थन करने में बैंकिंग प्रणाली द्वारा निभाई जाने वाली मुख्य भूमिका को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीयकरण के बाद वाली अवधि में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की जमा वृद्धि को मोटे तौर पर चार चरणों में विश्लेषित किया जा सकता है। जुलाई 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के तत्काल बाद से आरंभ होने वाले पहले चरण (1969-1984) में जमा-वृद्धि में तीव्रता से बढ़ोत्तरी हुई, क्योंकि राष्ट्रीयकरण के बाद हुए द्रुत शाखा विस्तार ने बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों से बचतों के दोहन में समर्थ बनाया। विशाल शाखा विस्तार के प्रभाव के तहत प्रति कार्यालय आबादी का स्तर 1969 के 65,000 से घटकर 1984 में 16,000 हो गया । दूसरे चरण (1985-1995) में जमा वृद्धि कम हो गई, क्योंकि बैंकों को वैकल्पिक बचत लिखतों, विशेषतः पूंजी बाज़ार के लिखतों (शेयरों, डिबेंचरों, म्यूच्युअल फंडों के यूनिटों) और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों से बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। यह अमध्यस्थीकरण वाला चरण था, क्योंकि बचतों को बैंकों की जमाराशियों में अभिनियोजित किए जाने के बजाय अधिकाधिक रूप से वैकल्पिक वित्तीय लिखतों में अभिनियोजित किया जाने लगा। तीसरे चरण (1995-2005) के दौरान डाकघर जमाराशियों और अन्य अल्प बचत लिखतों, जिन पर बैंक जमाराशियों की अपेक्षा पर्याप्त रूप से अधिक कर-समायोजित प्रतिलाभ उपलब्ध होते थे, से प्रतिस्पर्धा की पृष्ठभूमि में जमा-वृद्धि में और भी कमी आ गई। हालांकि, इस गिरावट के बावजूद, बैंक जमाराशियों ने घरेलू क्षेत्र की बचतों में अपने अंश को बनाए रखा। तथापि, इस चरण के दौरान स्वामित्व के स्वरूप और परिपक्वता के स्वरूप, दोनों में ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। सरकारी और कॉरपोरेट क्षेत्रों द्वारा धारित बैंक जमाराशियों के अंश में उल्लेखनीय रूप से बढ़ोत्तरी हुई, जबकि घरेलू क्षेत्र द्वारा धारित जमाराशियों के अंश में, घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतों में जमाराशियों का अंश व्यापक रूप से अपरिवर्तित रहने के बावजूद, महत्त्वपूर्ण रूप से गिरावट आई। जमाराशियों की परिपक्वता प्रोफाइल में भी परिवर्तन आ गया, क्योंकि कुल जमाराशियों में सावधि जमाराशियों का अंश महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ गया। सावधि जमाराशियों में मीयादी जमाराशियों का अंश भी बढ़ गया। इसके अलावा, मीयादी जमाराशियों में अल्पावधिक जमाराशियों के पक्ष में परिपक्वता प्रोफाइल में महत्त्वपूर्ण कमी आ गई। परिपक्वता प्रोफाइल में आया यह बदलाव व्यापक रूप से सरकारी और कॉरपोरेट क्षेत्रों के अंश में बढ़ोत्तरी तथा मीयादी जमाराशियों में घरेलू क्षेत्र के अंश में सहवर्ती कमी के कारण घटित हुआ।

11.15 अत्याधुनिक चरण (2005-2008) में बैंकों द्वारा ऋण की बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए किए गए ज़ोरदार संसाधन संग्रहण प्रयासों के प्रत्युत्तर में जमा-वृद्धि में महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ोत्तरी हुई । डाकघर की जमाराशियों को उपलब्ध कर लाभ सुविधा 5 वर्ष से अधिक परिपक्वता अवधि वाली बैंक जमाराशियों को भी प्रदान कर दिए जाने के फलस्वरूप

जमा-वृद्धि और भी सुलभ बना दी गई। बैंक जमाराशियों की यह त्वरित वृद्धि म्यूच्युअल फंडों और कंपनियों द्वारा नए पूंजी निर्गमों के माध्यम से जुटाए गए संसाधनों में हुई तीव्र वृद्धि के बावजूद संभव हुई। डाकघर जमाराशियों तथा अन्य अल्प बचतों की वृद्धि में गिरावट आई। फलस्वरूप घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतों में बैंक जमाराशियों और पूंजी बाज़ार के लिखतों के अंश तेजी से बढ़ गए तथा सरकार पर दावों के अंश में महत्त्वपूर्ण रूप से कमी आ गई।

11.16 बैंकों को वृद्धिशील अर्थव्यवस्था की संसाधन आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंक जमाराशियां हमेशा से बचत प्रक्रिया का मुख्य सहारा रही हैं तथा वित्तीय बचतों की दरों को बढ़ाने में बैंकों ने अधिकाधिक रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, तथापि भौतिक बचतों की वृद्धि वित्तीय बचतों के आगे-पीछे रही है। इस प्रकार, अनुत्पादक भौतिक बचतों को वित्तीय बचतों के रूप में रूपांतरित करना एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है । इसके अलावा, कुल जमाराशियों में घरेलू क्षेत्र की जमाराशियों के अंश में संकुचन को ध्यान में रखते हुए बैंकों के लिए जमाकर्ताओं के आधार को विशेषतः ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्रों में ग्राहकों की ज़रूरतों के अनुरूप तथा वैयक्तिक जोखिम-प्रतिलाभ आवश्यकताओं के अनुकूल विशेषताओं वाले उत्पाद उपलब्ध कराते हुए व्यापक बनाने के तरीकों को आजमाने की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, बदलती जनसांख्यिकीय एवं रोज़गार पद्धतियों ने भी बैंकों को यह अवसर प्रदान किया है कि वे अपेक्षाकृत युवा कार्यरत आबादी द्वारा मांगे जाने वाले नये वित्तीय उत्पाद उपलब्ध कराते हुए वित्तीय मध्यस्थों की उनकी भूमिका को निश्चेष्ट जमा संग्रहण की परम्परागत सीमाओं से बाहर पुनः अभिमुख करें।

11.17 बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे उधार लेने पर अधिक निर्भरता से बचने की प्रवृत्ति को जारी रखें क्योंकि वे अपने आपको गंभीर जोखिमों के प्रति एक्सपोज कर लेंगे, जैसा कि यू.के. के नॉर्दन रॉक बैंक के मामले में देखने में आया था। अंत में, निकट अतीत में ही निधियों को बैंकों के बजाय बैंकेतर लिखतों में प्रतिस्थापन की प्रवृत्ति देखने में आई थी तथा इस प्रकार की प्रवृत्तियां भविष्य में भी घटित हो सकती हैं। इसके लिए मौद्रिक समुच्चयों के आकलन एवं निर्वचन में अधिकाधिक सावधानी अपेक्षित होगी।

पूंजी और जोखिम का प्रबंधन

11.18 बैंकिंग कारोबार में निहित जोखिमों के अनुरूप बैंक की पूंजी बनाए रखने के महत्त्व को वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा एवं सुदृढ़ता को बनाए रखने की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। बासेल I ढांचा 100 से अधिक देशों में अंगीकृत कर लिया गया था। तथापि, पिछले वर्षों में आंशिक रूप से उसकी अन्तर्निहित विशेषताओं तथा आंशिक रूप से त्वरित वित्तीय नवोन्मेषों के कारण बासेल I की कतिपय कमियां प्रकाश में आई हैं। बासेल I की मुख्य परिसीमा उसका ''सभी के लिए एक जैसा'' दृष्टिकोण थी। हाल ही की खलबली के बाद बासेल I की अपर्याप्तताएं सुस्पष्ट दिखाई देने लगीं क्योंकि, वह तुलन पत्र में शामिल न की जाने वाली मदों के एक्सपोज़रों का पता नहीं लगा पाई। जुलाई 2006 में अंतिम रूप दिए गए बासेल II ढांचे में विनियामक पूंजी को वर्धित जोखिम मापन तकनीकों तथा जोखिम प्रबंधन के प्रति अधिक अनुशासित दृष्टिकोण अपनाते हुए बैंकिंग में अन्तर्निहित जोखिमों के साथ और अधिक गहनता से पंक्तिबद्ध करने का प्रयास किया गया है । इसके अलावा, बासेल II में कई प्रकार के सुरक्षोपायों की व्यवस्था की गई है, जिन्हें जोखिम प्रबंधन और बाज़ार अनुशासन के सुदृढ़ीकरण से संबंधित पर्यवेक्षकों के उद्देश्यों को पुनः प्रवर्तित किए जाने की सुविधा भी प्राप्त है।

11.19 अन्तरराष्ट्रीय उत्तम परम्पराओं के अनुरूप भारत ने भी बासेल II को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया। भारत में परिचालनरत विदेशी बैंकों तथा भारत के बाहर परिचालनात्मक उपस्थिति रखने वाले भारतीय बैंकों ने 31 मार्च 2008 से अपनी पूंजी आवश्यकताओं के परिकलन हेतु ऋण जोखिम के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण (एसए) और परिचालन जोखिम हेतु मूल संकेतक दृष्टिकोण (बीआइए) अपना लिया है। अन्य सभी वाणिज्यिक बैंकों (स्थानीय क्षेत्र बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को छोड़कर) द्वारा अधिकतम 31 मार्च 2009 तक बासेल II को अंगीकृत कर लिए जाने की आशा है। इन बैंकों के लिए समानांतर क्रम प्रगति पर हैं। बासेल II ढांचे को अंगीकृत करने हेतु विनियामक दबाव के अधीन भारतीय बैंकों में जोखिम प्रबंधन परंपराओं, आस्ति-देयता प्रबंधन और कॉरपोरेट अभिशासन में महत्त्वपूर्ण सुधार देखने में आया है।

11.20 चूंकि बैंकों को परिचालन जोखिम हेतु पूंजी बनाए रखनी होगी, ऋण जोखिम के कारण आवश्यक पूंजी में अपेक्षित कमी आने के बावजूद समग्र पूंजी आवश्यकताओं में वृद्धि होने की आशा है। चूंकि भारत में अधिकांश बैंक इस समय निर्धारित स्तर की तुलना में अधिक पूंजी पर्याप्तता अनुपात पर परिचालन कर रहे हैं, बासेल II की अपेक्षाओं को पूरा करना निकट भविष्य में कोई मुद्दा नहीं बनेगा। हालांकि, मध्य से लेकर दीर्घ अवधि में बैंकों को उनके कारोबार विस्तार के अनुरूप, पूंजी संसाधनों को बढ़ाना आवश्यक होगा। रिपोर्ट में किए गए आकलन से पता चलता है कि यह मान लेने पर कि बैंक 12 प्रतिशत का जोखिम-भारित आस्ति की तुलना में पूंजी का अनुपात (सीआरएआर) बनाए रखेंगे, 2007-08 से 2011-12 तक की पांच वर्षों की अवधि में कुल पूंजी आवश्यकताओं में लगभग 5,70,000 करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी होने का अनुमान है, जबकि सरकारी क्षेत्र के बैंकों की कुल पूंजी आवश्यकता में लगभग 3,70,000 करोड़ रुपये की वृद्धि होने का अनुमान है। जहां तक बैंकों को उपलब्ध विविध प्रकार के विकल्पों का संबंध है, अतीत में 85 प्रतिशत से अधिक पूंजी आवश्यकताएं बैंकों द्वारा आंतरिक रूप से सृजित संसाधनों द्वारा पूरी की गई थीं। आंतरिक संसाधनों के अलावा, बैंकों के पास नवोन्मेषी शाश्वत ऋण लिखतों (आइपीडीआइ) और शाश्वत असंचयी अधिमान शेयरों (पीएनसीपीएस) के तहत टियर I पूंजी बढ़ाने हेतु गुंजाइश उपलब्ध है। इसके अलावा, कुछ सरकारी क्षेत्र के बैंकों को बाज़ार से पूंजी जुटाने

तथा सरकारी शेयर पूंजी को घटा कर 51 प्रतिशत करने हेतु कुछ गुंजाइश भी उपलब्ध है।

11.21 बासेल II ढांचा जहां पूंजी आवश्यकताओं को जोखिम संवेदी बनाते हुए वित्तीय प्रणाली की स्थिरता को बढ़ाएगा, वहीं इसके कार्यान्वयन से कतिपय मुद्दें /चुनौतियां भी जन्म लेती है। वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पूंजी पर्याप्तता मानदंडों के अलग-अलग स्तरों में रखे जाने के फलस्वरूप, भारत त्रि-स्तरीय दृष्टिकोण अपनाता है। विभिन्न श्रेणियों वाले बैंकों के लिए पूंजी विनियमन में अलग-अलग स्तर की सख्ती विनियामक अंतरपणन की संभाव्यता को जन्म देती है। इसलिए गैर-बासेल संस्थाओं (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और राज्य सहकारी बैंकों) तथा मिला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों (डीसीसीबी) पर बासेल II के मानदंड लागू किए जाने की आवश्यकता है। कालांतर में वाणिज्यिक बैंकों के संबंध में बासेल II ढांचे को कार्यान्वित किए जाने के अनुभवों के आधार पर बासेल II मानदंडों को अन्य बैंकों पर लागू किए जाने के बारे में धारणा बनाई जा सकती है। मानकीकृत दृष्टिकोण के तहत ऋण जोखिम की माप करने हेतु ऋण एजेन्सियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। बैंकों को बाज़ार की घटनाओं के अनुरूप बनाने के लिए उनके कौशलों, प्रौद्योगिकी तथा जोखिम प्रबंधन परंपराओं को निरंतर एवं अविरत आधार पर उन्नत करते रहना होगा। बैंकों और रिज़र्व बैंक द्वारा विकसित किए जाने वाले यथोचित कौशलों के अलावा, अन्य उपाश्रयी जोखिमों एवं अनिश्चितताओं के साथ ही इन उन्नत दृष्टिकोणों को अपनाए जाने की बढ़ी हुई लागत यह आवश्यक बना देती है कि इन दृष्टिकोणों को अपनाए जाने से पहले पर्याप्त सुरक्षोपाय लागू किए जाएं। अन्य बातों के साथ-साथ इनमें लीवरेज अनुपात के निर्धारण का समावेश हो सकता है, ताकि धारित पूंजी में महत्त्वपूर्ण रूप से कमी न आने पाए। चक्रीय उधार के अनुकूल व्यवहार से संबंधित समस्या, जो बासेल II ढांचे में अन्तर्निहित होती है, बैंकों द्वारा विनियामक पूंजी की स्थिति को इस प्रकार से नियंत्रित करते हुए हल की जा सकती है कि वे आर्थिक गिरावट (मंदी) के दौरान पर्याप्त रूप से पूंजीकृत रहें, ताकि उन्हें पूंजी जुटाने की आवश्यकता न पड़े। कारोबार चक्र के विस्तार के दौरान पर्यवेक्षक भी स्तंभ 2 के तहत अतिरिक्त पूंजी निर्धारित कर सकते हैं। बासेल II मानदंडों के कार्यान्वयन से घरेलू मोर्चे पर समन्वय के मुद्दों के संबंध में तनाव निर्मित होने की संभावना रहती है तथा इस प्रकार के तनावों को दूर करना एक चुनौती हो सकती है।

बैंकों के उधार एवं निवेश संबंधी परिचालन

11.22 भारत में बैंक परम्परागत रूप से अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों हेतु ऋण के मुख्य स्रोत रहे हैं तथा उनके उधार देने से संबंधित परिचालन अर्थव्यवस्था की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किए गए हैं। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों में 1990 वाले दशक के प्रारंभिक दिनों से ही तीन सुस्पष्ट चरण परिलक्षित हुए हैं। पहले चरण (1990-91 से लेकर 1995-96 तक) में बैंक ऋणों की संवृद्धि अनियमित थी। दूसरे चरण (1996-97 से लेकर 2001-02 तक) में औद्योगिक मंदी, अनर्जक आस्तियों के अधिक स्तर और विवेकसम्मत मानदंडों को सख्त बनाए जाने, जिसने बैंकों को जोखिम के प्रति उदासीन बना दिया, के कारण ऋण संवृद्धि में तेज़ी से गिरावट आई और वह एक दायरे में बनी रही। तीसरे चरण (2002-03 से लेकर 2006-07 तक) में सामान्य रूप से आर्थिक विकास में सुधार, आस्ति की गुणवत्ता में तीव्र सुधार, मुद्रास्फीति और मुद्रास्फीति की अपेक्षाओं में कमी, वास्तविक ब्याज दरों में कमी, परिवारों की बढ़ती आय तथा निजी क्षेत्र के नए बैंकों के आगमन के फलस्वरूप वर्धित प्रतिस्पर्धा सहित कतिपय कारणों से ऋण में अधिक वृद्धि दर्ज हुई।

11.23 1990 वाले और वर्तमान दशक में आर्थिक सुधारों और विकासशील आर्थिक ढांचे का बैंक ऋणों पर अत्यधिक प्रभाव हुआ 1960 वाले दशक के मध्य काल से कृषि को प्रदत्त संस्थागत ऋणों में पर्याप्त प्रगति हुई। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा किए गए अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षणों के आधार पर खेतिहर परिवारों के संस्थागत स्रोतों से ली गई उधार राशियों का अंश 1951 के 7.3 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 66.3 प्रतिशत हो गया, किन्तु वर्ष 2002 में वह घटकर 61.1 प्रतिशत रह गया। 1991 और 2002 के बीच वाली अवधि में खेतिहर परिवारों द्वारा विशेषकर गैर-संस्थागत स्रोतों से ली गई उधार राशियों में तीव्रता से वृद्धि हुई। घरेलू ऋणग्रस्तता में हुई यह बढ़ोत्तरी व्यापक तौर पर उपभोग और उसी प्रकार के अन्य खर्चों के कारण हुई। अतएव यह संभव है कि खेतिहर परिवारों की गैर-संस्थागत स्रोतों के प्रति ऋणग्रस्तता में वृद्धि भी आंशिक रूप से उपभोग व्ययों में हुई वृद्धि के कारण हुई हो, जिसका संस्थागत स्रोतों द्वारा सहजता से वित्तीयन नहीं किया जा सकता था। इसके फलस्वरूप, खेतिहर परिवारों की ऋणग्रस्तता में गैर-संस्थागत स्रोतों का अंश 1991 और 2002 की अवधि में इस बात के बावजूद बढ़ गया कि संस्थागत स्रोतों के प्रति खेतिहर परिवारों की ऋणग्रस्तता 1981-91 की अवधि की तुलना में 1991 और 2002 के बीच की अवधि में अधिक दर से बढ़ी थी। इसके अलावा, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि को दिए गए ऋणों में 2002 (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के अद्यतन सर्वेक्षण का संदर्भ वर्ष) के बाद तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई। फलतः कुल ऋणों में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को दिए गए ऋणों के अंश तथा कृषि क्षेत्र की ऋण गहनता में महत्त्वपूर्ण रूप से वृद्धि हुई। हालांकि, कुछेक बेचैन कर देने वाली विशेषताएं भी परिलक्षित हुईं। पहली, कृषि क्षेत्र को कुल ऋणों में दीर्घावधिक ऋणों के अंश में 1991 और 2006 के बीच की अवधि में प्रायः स्थायी तौर पर गिरावट आई - 2006 में यह अंश 1991 वाले स्तर के आधे से भी कम था । दूसरी, कृषकों को दिए गए प्रत्यक्ष वित्त में सीमान्त कृषकों के अंश में, संवितरित रकम और उनके द्वारा धारित ऋण खातों की कुल संख्या की दृष्टि से थोड़ी सी प्रत्यक्ष बढ़ोत्तरी परिलक्षित हुई। तीसरी, वर्तमान दशक में कुल कृषि उधार खातों में कृषि से संबंधित लघु उधार खातों (2 लाख रुपये तक की ऋण सीमा वाले कृषि उधार खाते) का अंश कम हो गया। हालांकि इस गिरावट का आंशिक कारण

विशेषतः 25,000 रुपये से कम की ऋण सीमा आकार वाले लघु उधार खातों के मामले में मुद्रास्फीति के कारण ऋणों के अपेक्षाकृत अधिक ऋण सीमा आकार वाले वर्गों में चला जाना हो सकता है ।

11.24 यद्यपि, कुल बैंक ऋणों में उद्योग को ऋण के अंश में कमी आई, तथापि उद्योग की ऋण गहनता में तीव्रता से वृद्धि हुई। एक देशव्यापी सर्वेक्षण से पता चलता है कि भारत में उद्योग की बैंकिंग क्षेत्र पर निर्भरता कई अन्य देशों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक है। हाल के वर्षों में आधारभूत सुविधा क्षेत्र के प्रति भारतीय बैंकों का एक्सपोजर बढ़ गया है। हालांकि, उद्योग की बढ़ी हुई ऋण गहनता का कारण केवल आधारभूत सुविधा क्षेत्र के प्रति वर्धित एक्सपोजर ही नहीं हो सकता । लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र को ऋण वृद्धि में, जिसमें 1996-97 और 2003-04 के बीच में महत्त्वपूर्ण रूप से कमी आ गई थी, 2004-05 से तेजी आई। हालांकि, कुल खाद्येतर बैंक ऋणों में लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र के अंश में प्रायः निरंतर रूप से गिरावट आई, जो 1990-91 के 15.1 प्रतिशत से घटकर 2006-07 में 6.5 प्रतिशत हो गया तथा प्राथमिकता क्षेत्र के कुल अग्रिमों में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित हुई जो मार्च 1998 के अंत के 43.6 प्रतिशत से घटकर मार्च 2006 के अंत में 17.9 प्रतिशत हो गया। मार्च 2007 के अंत में यह सीमांत रूप से बढ़कर 18.6 प्रतिशत हो गया । इससे यह पता चलता है कि ये बड़ी कॉरपोरेट कंपनियां ही हैं जिन्होंने बैंकिंग क्षेत्र पर अपनी निर्भरता बढ़ा ली है । पिछले दशक में जो महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई वह है भारत में ऋण का खुदरा ऋण की दिशा में विशाखन । कुल बैंक ऋणों में आवासीय ऋण, व्यक्तियों को दिए गए ऋणों, क्रेडिट कार्डों की प्राप्य राशियों तथा टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं को दिए गए उधारों आदि के समावेश वाले खुदरा ऋणों का अंश 1990 के 6.4 प्रतिशत से बढ़कर 2007 में 22.3 प्रतिशत हो गया । कुल मिलाकर ऋण विस्तार से कृषि, बड़ी कॉरपोरेट कंपनियां और खुदरा क्षेत्र लाभान्वित हुए, जबकि लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र की ऋण संवृद्धि हाल के दिनों तक हल्की बनी रही।

11.25 बैंकों का निवेश संविभाग (न्यूनतम सांविधिक अपेक्षाओं द्वारा अनिवार्य बना दिए गए निवेशों को छोड़कर) मुख्यतः ऋण संविभाग की आवश्यकताओं के प्रत्युत्तर में समायोजित किया जाता था। 1993-94 और 1997-98 के बीच वाली अवधि में, जब सांविधिक चलनिधि अनुपात में महत्त्वपूर्ण रूप से कमी की गई थी, एसएलआर प्रतिभूतियों में बैंकों का निवेश ऊँचे स्तर पर बना रहा। यह मुख्यतः इसलिए था कि बैंक के ऋण की मांग में कमी आ गई थी तथा उनकी आस्ति गुणवत्ता के क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण बैंक जोखिम विमुख हो गए थे। हालांकि, 2002-03 से लेकर 2006-07 तक की अवधि के दौरान, जब ऋण की मांग में तेजी आ गई और उनकी आस्ति की गुणवत्ता में सुधार आ गया, तो बैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों के अधिशेष स्टॉक का परिसमापन कर दिया। बैंकों द्वारा किए गए गैर एसएलआर निवेश उनकी सांविधिक चलनिधि अनुपात संविभाग की आवश्यकता और ऋण की मांग के प्रत्युत्तर में शीघ्र ही समायोजित कर दिए जाते थे ।

11.26 हाल के वर्षों में कृषि और लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्रों की ऋण संवृद्धि में आई कुछ तेजी के बावजूद, अर्थव्यवस्था में उनके महत्त्व को देखते हुए उन क्षेत्रों को ऋण प्रवाह को बढ़ाने हेतु सम्मिलित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। ऋण अवशोषक क्षमता बढ़ाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में समर्थक स्थितियां निर्मित किए जाने अर्थात सिंचाई सुविधाएं, ग्रामीण सड़कें और अन्य आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता है। भारत में किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए अनुकूल उत्पाद तैयार किया जाना महत्त्वपूर्ण होता है। कृषि क्षेत्र में जोखिम प्रबंधन हेतु एक व्यापक सार्वजनिक नीति बनाए जाने की भी आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र के ऋण प्रवाह में सहजता लाने के लिए भू-अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण का दूरगामी प्रभाव होगा।

11.27 लघु एवं मध्यम उद्यमों को ऋण प्रवाह बढ़ाने के लिए बैंकिंग संस्थाओं को अपने ऋण निर्धारित क्षमताओं में सुधार लाए जाने की आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि लघु स्तरीय उद्यमों का वैज्ञानिक रीति से मूल्यांकन किया जाए और केवल अनुभूति के आधार पर 'लघु उद्योगों को अधिक जोखिम वाला क्षेत्र नहीं माना जाए'। कई एक अनुभवजन्य अध्ययनों से यह पता चला है कि समूह आधारित उधार का उपयोग कई एक देशों के साथ भारत में भी बहुत अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के समूहों को प्रोत्साहित किया जाए । लघु एवं मध्यम उद्यमों की औपचारिक ऋण तक पहुँच को विस्तारित करने के लिए लघु व्यवसाय ऋण स्कोरिंग ने कई एक अर्थव्यवस्थाओं में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। भारत में ऋण आसूचना कंपनियों का जैसे-जैसे विकास होता जा रहा है, लघु एवं मध्यम उद्योगों के संबंध में बेहतर और अधिक व्यवस्थित ऋण आसूचना उपलब्ध होनी चाहिए। आस्ति आधारित उधार देने की प्रणाली अमरीका और कुछ अन्य विकसित देशों में अत्यधिक सफल रही है। भारत के बैंक भी सूचनात्मक रूप से अपारदर्शी लघु एवं मध्यम उद्यमों के लिए यही पद्धति अपना सकते हैं।

11.28 आधारभूत सुविधा में बैंकों के बढ़े हुए एक्सपोजर को ध्यान में रखते हुए बैंकों के लिए आस्ति देयता असंतुलनों के समक्ष सतर्कता बरतना आवश्यक होगा । बैंकों के तुलनपत्रों से जोखिमों को वित्तीय प्रणाली की अन्य संस्थाओं को अंतरित किए जाने पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । कई एक विकसित एवं उभरती अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग की बैंकिंग क्षेत्र में निर्भरता में कमी आई है वहीं इसके विपरीत, औद्योगिक क्षेत्र की बैंकिंग क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता का क्रम अब भी जारी है । अतएव उद्योग के लिए यह आवश्यक है कि वह बैंकिंग पर अपनी निर्भरता में क्रमिक रूप से कमी लाए, ताकि वह कृषि, आधारभूत सुविधा और लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र, जो अन्य स्रोतों से निधियों का दोहन करने में असमर्थ हैं, की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके ।

वित्तीय समावेशन

11.29 वित्तीय समावेशन को व्यापक रूप से समान संवृद्धि सुनिश्चित करने में एक महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में पहचाना जाता है । यद्यपि इस

विषय पर विस्तृत साहित्य मौजूद है, तथापि वित्तीय समावेशन/अपवर्जन की सार्वत्रिक रूप से स्वीकार्य कोई परिभाषा नहीं है। इसने वित्तीय समावेशन/अपवर्जन की माप को भी अवरुद्ध कर दिया है। भारतीय संदर्भ में वित्तीय समावेशन को औपचारिक वित्तीय प्रणाली द्वारा, इन सेवाओं से वंचित लोगों को वहनीय वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था अर्थात भुगतान एवं विप्रेषण सुविधाओं, बचतों, ऋणों तथा बीमा सेवाओं तक पहुँच के रूप में वर्णित किया गया है। बहुविध दृष्टिकोण अपनाते हुए भारत में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए समय-समय पर कतिपय नीतिगत पहलकदमियां की जाती रही हैं यद्यपि 'वित्तीय समावेशन' शब्दावली 2005 तक प्रचलन में नहीं थी। तथापि, वित्तीय समावेशन में हुई प्रगति का आकलन प्रासंगिक आंकड़ों/सूचना के अभाव में अवरुद्ध हो जाता है। तदनुसार इस रिपोर्ट में कुछेक प्रतिनिधि संकेतकों और घरेलू ऋणग्रस्तताओं के संबंध में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन सहित विविध स्रोतों से उपलब्ध आंकड़ों/सूचनाओं के आधार पर इसके आकलन का प्रयास किया गया है। कार्य प्रणालीपरक/परिभाषात्मक अंतरों के कारण विविध आंकड़ों के समुच्चयों/स्रोतों से वित्तीय समावेशन की भिन्न-भिन्न सीमाओं का पता चलता है । अतएव, किसी एकल स्रोत के आधार पर वित्तीय समावेशन/अपवर्जन की सीमा के बारे में किसी पुष्ट निष्कर्ष पर पहुँचने के समय अत्यधिक सावधानी बरते जाने की आवश्यकता है।

11.30 उपलब्ध सूचना से यह पता चलता है कि 1960 वाले दशक के उत्तरार्ध से लेकर 1990 वाले दशक के प्रारंभिक दिनों तक की अवधि में औपचारिक वित्तीय सेवाओं के विस्तार में यथाप्रतिबिंबित वित्तीय समावेशन में पर्याप्त रूप से बढ़ोत्तरी हुई है। 1990 वाले दशक में भी यही प्रवृत्ति जारी रही। हालांकि, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के अखिल भारतीय ऋण एवं निवेश सर्वेक्षण के 59वें दौर के अनुसार गैर-संस्थागत स्रोतों से ऋण लेने वाले परिवारों की संख्या वाले अंश में 1991 के स्तर (पिछले सर्वेक्षण का संदर्भ वर्ष) की तुलना में 2002 में तेजी से वृद्धि हुई। यह वृद्धि मुख्यतः परिवारों की उपभोग एवं उसी प्रकार के अन्य उद्देश्यों हेतु बढ़ी हुई ऋणग्रस्तता के कारण हुई, जिसके लिए औपचारिक स्रोतों से वित्त सहजता से प्राप्त नहीं किया जा सकता था। फलतः 1991 और 2002 के बीच की अवधि में गैर-संस्थागत स्रोतों के प्रति परिवारों की ऋणग्रस्तता इस बात के बावजूद बढ़ गई कि 1991 और 2002 के बीच की अवधि में परिवारों को दिए गए संस्थागत ऋण ठीक उसी दर से व्यापक रूप से बढ़े जैसे कि 1981 और 1991 के बीच वाली अवधि में बढ़े थे। संस्थागत स्रोतों में 1991 और 2002 की अवधि में 1981 और 1991 के बीच वाली अवधि की तुलना में बैंक ऋणों में सीमान्त रूप से कमतर दर पर वृद्धि हुई, जिसे 1990 वाले दशक में विवेकसम्मत मानदंडों को लागू किए जाने/सख्त बनाए जाने के कारण बैंकों द्वारा उनके तुलनपत्रों के सुदृढ़ीकरण पर अधिक ध्यान दिए जाने के संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। 1991 और 2002 के बीच वाली अवधि में बैंकों के प्रति परिवारों की ऋणग्रस्तता में आई मामूली सी कमी समग्र बैंक ऋणों में आई कमी के ही अनुरूप थी।

11.31 बैंकों की वित्तीय स्थिति में सुधार हो जाने के बाद उन्होंने अपने ऋण संविभाग को पुनः विस्तारित करना आरंभ कर दिया। रिज़र्व बैंक और सरकार ने भी अधिक से अधिक लोगों को बैंकिंग की परिधि में लाने के लिए कतिपय उपायों की शुरुआत की। 2002 से आगे की मूल सांख्यिकी विवरणियों के आंकड़ों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि 2002 और 2007 के बीच वाली अवधि अर्थात राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के आंकड़े जारी किए जाने के बाद ग्रामीण और कृषि क्षेत्र को ऋण-व्यापन (प्रति 100 व्यक्तियों पर ऋण खाते) और ऋण प्रवाह में महत्त्वपूर्ण रूप से वृद्धि हुई । हाल के वर्षों में की गई पहलकदमियों के प्रत्युत्तर में समस्त संगठित वित्तीय संस्थाओं (वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, शहरी सहकारी बैंकों, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों, व्यष्टि वित्त संस्थाओं और स्व-सहायता समूहों) के पास प्रति 100 वयस्क पर खोले गए ऋण खातों की संख्या 2002 के 18 से बढ़कर 2007 में 25 हो गई। उक्त आंकड़ों से व्यष्टि वित्त आंदोलन में हुए महत्त्वपूर्ण सुदृढ़ीकरण का भी पता चलता है। ऋण-व्यापन के अलावा जमा-व्यापन में भी महत्त्वपूर्ण सुधार परिलक्षित होता है। समस्त औपचारिक संस्थाओं में खोले गए बचत खातों की संख्या 1993 में प्रति 100 व्यक्ति 51 (प्रति 100 वयस्क 80) थी, जो बढ़कर 2007 में प्रति 100 व्यक्ति 54 (प्रति 100 वयस्क 82) हो गई। देश के लगभग 22 प्रतिशत व्यक्ति, जो गरीबी रेखा के नीचे हैं, के पास बचत करने की अत्यल्प या कोई क्षमता नहीं है। गरीबी रेखा से नीचे वाले लोगों को अलग कर दिए जाने के बाद प्रति 100 वयस्क 100 बचत खातों से कुछ अधिक खाते रह जाते हैं।

11.32 जहां हाल के वर्षों में वित्तीय समावेशन में महत्त्वपूर्ण सुधार परिलक्षित हुआ है, आगे बढ़ने पर कुछ चुनौतियां शेष रह जाती हैं, जिनका निराकरण किया जाना आवश्यक है । सर्वप्रथम, वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त नीतिगत अनुक्रिया आरंभ करने हेतु वित्तीय अपवर्जन की समस्या का यथोचित आकलन आवश्यक है । हालांकि, वर्तमान में इस प्रकार की सूचना का एक भी व्यापक स्रोत अस्तित्व में नहीं है । अतएव वित्तीय समावेशन/अपवर्जन से संबंधित सूचना एकत्र करने के लिए विशिष्ट सर्वेक्षण किए जाने की आवश्यकता है । वैकल्पिक रूप से, वित्तीय समावेशन/अपवर्जन से संबंधित सूचना शामिल किए जाने हेतु दशकीय जनगणना के दायरे को विस्तारित किया जा सकता है ।

11.33 वित्तीय समावेशन में एक महत्त्वपूर्ण अड़चन है उच्च परिचालन लागत, क्योंकि संस्थाओं को दूर-दराज के इलाकों तक पहुंचना होता है और छोटे-छोटे लेन-देन करने होते हैं । इस प्रकार वर्धित वित्तीय समावेशन की कुंजी लेन-देन लागतों में कमी लाने में निहित है । यहां प्रौद्योगिकी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । संस्थागत विकास के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और सहकारी बैंकों, जिनकी स्थापना वित्तीय सेवाओं की पहुँच को बैंकिंग सुविधा से वंचित क्षेत्रों/खण्डों तक विस्तारित करने के ही उद्देश्य से की गई थी, से भविष्य में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है । हालांकि, इन सभी संस्थाओं और बैंकों के लिए कम आय वाले लोगों की आवश्यकताओं के

अनुकूल आवश्यकता आधारित उपयुक्त उत्पाद तैयार किए जाने की आवश्यकता होगी, ताकि वे गैर-संस्थागत स्रोतों की ओर जाने हेतु प्रवृत्त न हों। गरीब लोगों को शिक्षित करते हुए वित्तीय साक्षरता और ऋण परामर्श वित्तीय समावेशन हेतु सही स्थितियों के निर्माण में दूरगामी प्रभाव वाले सिद्ध हो सकते हैं। मूलभूत बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए वित्तीय सेवाओं की अवशोषक क्षमता को भी बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य, जल, सफाई एवं शिक्षा जैसे मानव विकास के कार्यों में निवेश विशेष रूप से सहायक होगा। भविष्य में ग्रामीण क्षेत्रों में आय में अपेक्षाकृत त्वरित वृद्धि और गैर-कृषि आधारित कार्य-कलापों में बढ़ोत्तरी के परिणामस्वरूप ऋण की मांग में वृद्धि होगी। अत: बैंकों को बढ़ती हुई ऋण की मांग को पूरा करने हेतु अधिकाधिक रूप से अपेक्षाकृत बड़े संसाधन जुटाने होंगे। इसके साथ ही बैंकों के लिए ऋण की गुणवत्ता बनाए रखने तथा ऋण संवृद्धि को स्थिर रखने के उद्देश्य से जोखिम-निर्धारण और जोखिम प्रबंधन क्षमताओं को भी बढ़ाने की आवश्यकता होगी।

प्रतिस्पर्धा एवं समेकन

11.34 1990 वाले दशक के प्रारंभ से ही मुख्यतः प्रतिस्पर्धात्मक दबावों द्वारा संचालित विश्व भर में विलयन और अभिग्रहण की घटनाएं त्वरित गति से हुई हैं। इसके फलस्वरूप, सम्पूर्ण विश्व में परिचालनरत बैंकों की कुल संख्या में कमी आ गई। देश-वार साक्ष्य से पता चलता है कि कुछेक देशों में समेकन की प्रक्रिया बाजार की शक्तियों का परिणाम रही है, जबकि कुछेक अन्य मामलों में यह सरकार के नेतृत्व में संपन्न हुआ है। सुधारोत्तर अवधि में भारत में बैंक समामेलनों की संख्या में महत्त्वपूर्ण वृद्धि दर्ज हुई है। जहां 1999 से पूर्व वाली अवधि में बैंकों के समामेलन प्राथमिक तौर पर विलयित किए जाने वाले बैंकों की कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण हुआ करते थे, वहीं 1999 के बाद वाली अवधि में व्यावसायिक और वाणिज्यिक आधारों द्वारा संचालित विलयन वित्तीय रूप से सुदृढ़ बैंकों के बीच संपन्न हुए हैं।

11.35 कई एक विलयनों एवं अभिग्रहणों के बावजूद, भारतीय बैंकिंग प्रणाली सुधारोत्तर अवधि के दौरान कम संकेन्द्रित हो गई। वास्तव में भारतीय बैंकिंग प्रणाली में संकेन्द्रण का स्तर संकेन्द्रण अनुपात और हर्षमैन-हरफिनधल सूचकांक के आधार पर वर्ष 2006 के लिए अध्ययन किए गए चुनिंदा देशों में सबसे कम था। सुधार के प्रारंभिक वर्षों में प्रतिस्पर्धा के स्तर में कुछ न कुछ कमी आई, किन्तु उसके बाद वह महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ गई। अनुभवजन्य साक्ष्य के आधार पर भारतीय बैंकिंग उद्योग की विशेषता अधिकांश अन्य विकसित देशों और उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान स्थिति के अनुरूप ही एकाधिकारवादी प्रतिस्पर्धात्मक ढांचे वाली रही है। एक अनुभवजन्य विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि विलयनों एवं समामेलनों का, आस्तियों पर प्रतिलाभ में वृद्धि और लागत में कमी, दोनों ही दृष्टियों से हस्तांतरतियों के सरकारी क्षेत्र के बैंक होने पर कार्य-कुशलता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा ।

11.36 भारत में बैंक समेकन की प्रक्रिया में कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे उभरे हैं। ये मुद्दे आगे के समेकन के स्वरूप और उसकी सीमा, सरकारी क्षेत्र के बैंकों के निरंतर सरकारी स्वामित्व, बैंकिंग क्षेत्र के विदेशी बैंकों के लिए और खोले जाने तथा बैंकिंग एवं वाणिज्य के संयोजन से संबंधित हैं। बैंकिंग क्षेत्र में समेकन, जो पहले से ही जारी है, में विदेशी बैंकों की रूपरेखा की नियोजित समीक्षा और बासेल II के कार्यान्वयन जैसी कतिपय घटनाओं को देखते हुए भविष्य में तेज़ी आ सकती है। मध्यावधि से लेकर दीर्घावधि में सरकारी क्षेत्र के बैंकों के स्वामित्व का स्वरूप भी बदल सकता है। जहां बैंकिंग क्षेत्र का कुछ समेकन आवश्यक है, यह सुनिश्चित करने के लिए एक नीति का लागू किया जाना उपयुक्त होगा कि भविष्य में किसी भी समय प्रतिस्पर्धा की अनदेखी न होने पाए।

11.37 सरकारी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व के मुद्दे को बदले हुए परिचालनात्मक परिवेश में देखे जाने की आवश्यकता है। सरकारी क्षेत्र के बैंकों का स्वामित्व कार्यकुशलता के दृष्टिकोण से कोई मुद्दा नहीं है क्योंकि जैसा कि विभिन्न उपायों से पता चलता है कि भारत में सरकारी क्षेत्र के बैंक अब उतने ही कार्य कुशल दिखाई देते हैं, जितने कि निजी और विदेशी बैंक। हालांकि, बैंकों का परिचालनात्मक वातावरण तेज़ी से बदल रहा है तथा उभरती स्थितियों से निपटने के लिए बैंकों को लचीलेपन की आवश्यकता है। एक अन्य मुद्दा जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है, वह है सरकारी क्षेत्र के बैंकों में सरकारी इक्विटी पर 51 प्रतिशत की वर्तमान न्यूनतम सीमा (फ्लोर) को देखते हुए सरकारी क्षेत्र के बैंकों की पूंजी आवश्यकता का निधीयन। मध्यावधि में उनके विस्तार के लिए सरकार के पर्याप्त पूंजी उपलब्ध कराने में समर्थ न होने पर यह सरकारी क्षेत्र के बैंकों के विकास को अवरुद्ध करने वाला मुद्दा बन सकता है।

11.38 विदेशी बैंकों की रूपरेखा की 2009 में समीक्षा करना तय है। इसमें कतिपय मुद्दे शामिल होंगे। प्रतिस्पर्धा को गहन बनाकर विदेशी बैंकों की बढ़ी हुई उपस्थिति उस समेकन प्रक्रिया को तीव्र बना सकती है, जो इस समय जारी है। तथापि, इसके साथ ही, विलयनों/समामेलनों में बड़े बैंकों को शामिल किए जाने पर इससे संकेन्द्रण जोखिम भी पैदा हो सकता है। कुछेक अन्य देशों के अनुभव से यह भी पता चलता है कि समेकन के कारण बड़े बैंकों के अभ्युदय के फलस्वरूप लघु उद्यमों को उधार दिए जाने में महत्त्वपूर्ण रूप से कमी आ गई। इन सभी मुद्दों पर समीक्षा के समय सावधानीपूर्वक विचार किए जाने की आवश्यकता होगी।

11.39 वाणिज्यिक हितों द्वारा बैंकों के स्वामित्व से संबंधित नीति में हितों के संभाव्य टकराव, संसर्ग के प्रभाव की वर्धित संभाव्यता तथा वर्धित संकेन्द्रण से संबंधित मुद्दों को देखते हुए अन्तरराष्ट्रीय परंपराओं को पूरे तौर पर ध्यान में रखा जाना अपेक्षित होगा ।

भारत में बैंकिंग क्षेत्र की कार्य-कुशलता, उत्पादकता और सुदृढ़ता

11.40 भारत में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कार्य-कुशलता का लेखांकन और आर्थिक दोनों ही मापों का उपयोग करते हुए अनुभवजन्य

आधार पर विश्लेषण किया गया था। लेखांकन मापों से यह पता चला है कि सुधारोत्तर अवधि में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की उत्पादकता/कार्य-कुशलता में सर्वांगीण सुधार आया है। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की शुरुआत करते समय, अधिकांश कार्य-कुशलता अनुपात अत्यधिक उन्नत देशों और उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं के साथ तुलना किए जाने पर बहुत कम थे। बैंकों, विशेषतः राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्य-निष्पादनों में सुधार प्रारंभिक वर्षों में वांछित रूप में सफल नहीं हो पाए थे, क्योंकि नए परिवेश से सामंजस्य बिठाने में उन्हें कुछ समय लगा। तथापि, विशेषतः 2001-02 की शुरुआत से सुस्पष्ट सुधार दृष्टिगोचर होने लगा। कार्य-कुशलता/उत्पादकता संबंधी मानदण्ड वैश्विक स्तरों के निकट पहुंच गए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुधार सरकारी क्षेत्र के बैंकों के कार्य-निष्पादन में आया। अधिकांश मानदंडों की दृष्टि से सरकारी क्षेत्र के बैंकों का कार्य-निष्पादन विदेशी बैंकों और निजी क्षेत्र के नये बैंकों के साथ अभिसरित होता था।

11.41 सभी बैंक समूहों में मध्यस्थीकरण लागत के साथ ही निवल ब्याज मार्जिन में भी कमी आ गई। हालांकि, इसके बावजूद बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता में बढ़ोत्तरी हुई। इस प्रकार वह अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दर अंतर नहीं, अपितु वर्धित कारोबार परिमाण तथा कार्य-कुशलता में सुधार था, जिसके फलस्वरूप लाभप्रदता अपेक्षाकृत अधिक हो गई। जहां प्रतिस्पर्धी दबावों ने बैंकों को उनके उत्पादों का मूल्य-निर्धारण भड़कीले ढंग से करने पर विवश किया, वहीं संतुलित आर्थिक वृद्धि के फलस्वरूप वर्धित परिमाण तथा 2002-03 से 2004-05 तक की अवधि के दौरान खजाना परिचालनों से विशाल व्यापारिक लाभों ने भी बैंकों को उनकी लाभप्रदता को स्थिर रखने में समर्थ बनाया। सभी बैंक-समूहों में प्रति कर्मचारी और प्रति शाखा कारोबार भी महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ा। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप सुधारोत्तर अवधि के दौरान आस्तियों पर प्रतिलाभ और इक्विटी पर प्रतिलाभ में भी बढ़ोत्तरी हुई।

11.42 हालांकि, विविध लेखांकन मापों में आया सुधार सभी बैंक समूहों में अलग-अलग था। लागत अनुपात (आय की तुलना में परिचालन लागत) की दृष्टि से घरेलू बैंकों की अपेक्षा विदेशी बैंक अधिक कार्यकुशल थे। इसी प्रकार, श्रमिक उत्पादकता की दृष्टि से विदेशी और नये निजी बैंक उनके समान समूहों से आगे थे। सरकारी क्षेत्र के बैंकों में प्रति कर्मचारी कारोबार द्वारा प्रतिबिंबित श्रमिक उत्पादकता उद्योग के सर्वश्रेष्ठ कार्य-निष्पादकों अर्थात् विदेशी बैंकों और नए निजी बैंकों की लगभग आधी थी। इसका कारण लेन-देन का आकार था, जो विदेशी और नए निजी बैंकों के मामले में अधिक महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि वे प्रमुख कॉरपोरेट कंपनियों और अधिक निवल हैसियत वाले व्यक्तियों से व्यवहार करते हैं। निवल ब्याज मार्जिन और मध्यस्थीकरण लागत की दृष्टि से क्रमशः निजी क्षेत्र के नए बैंक और सरकारी क्षेत्र के बैंक अन्य बैंक समूहों की तुलना में अधिक कार्य-कुशल थे। विदेशी बैंकों की जमा लागत सबसे कम थी। हालांकि, इसका लाभ उधारकर्ताओं को नहीं प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप निवल ब्याज अंतर अपेक्षाकृत अधिक हो गया। एक अनुभवजन्य अभ्यास से यह पता चला है कि निवल ब्याज मार्जिन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक परिचालन लागत थी । गैर-ब्याजगत आय और आस्ति की गुणवता निवल ब्याज मार्जिन के अन्य निर्धारक कारक थे ।

11.43 अप्राचलिक आंकड़ा पर्यावरण विश्लेषण (डीईए) पद्धति का उपयोग करते हुए मापी गई कार्य-कुशलता और उत्पादकता से लेखांकन मापों अथवा वित्तीय अनुपातों की पुष्टि हो गई। सभी बैंकों में कार्य-कुशलता बढ़ी और कार्य-कुशलता से संबंधित ये अभिलाभ सुधारों के कुछ वर्ष बाद अर्थात 1997-98 से उद्भूत हुए। वर्धित कार्य-कुशलता स्तरों के साथ प्रौद्योगिकीय नवोन्मेषों के फलस्वरूप बैंकों की उत्पादकता में सभी स्तरों पर वृद्धि हुई। जहां सरकारी क्षेत्र के बैंकों और निजी क्षेत्र के नए बैंकों सहित अधिकांश घरेलू बैंक वर्धित उत्पादन संभाव्यता के निकट पहुंचने में समर्थ हुए, वहीं कुछेक बैंक प्रौद्योगिकीय नवोन्मेषों की गति के अनुरूप चलने में पीछे रह गए। अनुभवजन्य विश्लेषण से यह पता चलता है कि भारतीय संदर्भ में स्वामित्व और कार्य-कुशलता के बीच किसी प्रकार का संबंध नहीं है, क्योंकि सर्वाधिक कार्य-कुशल बैंक सभी तीनों ही खण्डों अर्थात् सरकारी, निजी और विदेशी से संबंधित हैं। वास्तव में, 28 अल्पतम कार्य-कुशल बैंक निजी और विदेशी बैंक खण्ड से संबंधित थे। दूसरी ओर, आकार और कार्य-कुशलता के बीच तथा विविधीकरण और कार्य-कुशलता के बीच भी एक सकारात्मक और महत्त्वपूर्ण संबंध विद्यमान है। इससे यह संकेत प्राप्त होता है कि बड़े और विविधीकृत बैंक अधिक कार्य-कुशल हैं। बढ़ी हुई कार्य-कुशलता और उत्पादकता में विविध कारकों ने योगदान किया। इनमें प्रौद्योगिकीय उन्नतियों, सांविधिक पूर्व-कृत्यों में कटौती, अनर्जक आस्तियों में कमी, जमाराशियों की परिपक्वता प्रोफाइल में कमी, आस्ति प्रोफाइलों में बढ़ोत्तरी का समावेश था।

11.44 जैसा कि जोखिम-भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी के अनुपात से पता चलता है कि भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की वित्तीय सुदृढ़ता में समग्र स्तर और सभी बैंक समूहों दोनों ही दृष्टियों से सुधार आया, दुर्भाग्य और घटिया प्रबंधन, दोनों ही परिकल्पनाओं के साक्ष्य उपलब्ध कराते हुए, उक्त विश्लेषण से पता चलता है कि स्थूल आर्थिक कारकों के साथ-साथ प्रबंधन की गुणवत्ता बैंकों की आस्ति गुणवत्ता को प्रभावित कर देते हैं ।

11.45 महत्त्वपूर्ण सुधारों के बावजूद कतिपय ऐसे क्षेत्र मौजूद हैं जिनका निराकरण किया जाना ज़रूरी है । भारत में व्यापक तौर पर अधिक परिचालन लागतों से प्रभावित मध्यस्थीकरण लागत वैश्विक मानकों की तुलना में अब भी अधिक है। अतएव परिचालन लागत में कमी लाए जाने की आवश्यकता है। जैसे-जैसे प्रतिस्पर्धा गहन होती जाती है, बैंकों के निवल ब्याज मार्जिनों के भविष्य में अधिक दबाव में आने की संभावना है। इसलिए बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी लाभप्रदता को टिकाए रखने के लिए आय के गैर-ब्याजगत स्रोतों की तलाश करें। यद्यपि विदेशी बैंकों के मामले में निधि की

लागत उल्लेखनीय रूप से कम है, तथापि, जैसा कि अधिक निवल ब्याज मार्जिन से पता चलता है, निधियों की कम लागत के लाभ उधारकर्ताओं को उपलब्ध नहीं कराए गए । यद्यपि, कुल मिलाकर कार्य-कुशलता और उत्पादकता में सुधार आया, तथापि इस आशय के साक्ष्य मौजूद हैं कि संसाधनों का उपयोग कुशलतम विधि से नहीं किया जा रहा है । सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामले में, चिंता का एक क्षेत्र है प्रति कर्मचारी कम कारोबार, जो निजी क्षेत्र के नए बैंकों के मुकाबले लगभग आधा ही है । अत: सरकारी क्षेत्र के बैंकों की श्रमिक उत्पादकता बढ़ाने तथा उसे निजी क्षेत्र के नए बैंकों के समकक्ष लाने हेतु और अधिक प्रयास करने होंगे । इसी प्रकार, कतिपय बैंकों द्वारा वर्धित प्रौद्योगिकीय क्षमता (नवोन्मेष) को अधिकाधिक आत्मसात किए जाने की जरूरत है, ताकि प्रक्रियाओं में परिवर्तन और मानव संसाधन कौशल में सुधार के माध्यम से बैंकिंग क्षेत्र की उत्पादकता में और अधिक वृद्धि की जा सके। भारत में बैंकिंग क्षेत्र के समक्ष भावी चुनौती है मध्यस्थीकरण की लागत में कमी लाना और उसके साथ ही अधिक लाभप्रदता को बनाए रखना। इसे केवल कार्य-कुशलता बढ़ाकर तथा आय के गैर-ब्याजगत स्रोतों का दोहन करके ही प्राप्त किया जा सकता है ।

बैंकिंग में विनियामक एवं पर्यवेक्षी चुनौतियां

11.46 पिछले कुछ वर्षों में वित्तीय भू-दृश्य में महत्त्वपूर्ण रूप से परिवर्तन आया है, जिसने विनियामकों के समक्ष नयी चुनौतियां प्रस्तुत कर दी हैं। विश्व भर के बैंकिंग पर्यवेक्षक उस वित्तीय उद्योग के लिए, जो निरंतर परिवर्तित होता रहता है, उपयुक्त विनियामक एवं पर्यवेक्षी ढांचे का विकास करने की चुनौती से जूझ रहे हैं । इसलिए, विनियमन और पर्यवेक्षण के कतिपय पहलुओं पर पुनर्चिंतन की प्रक्रिया जारी है । यू.के. जैसे कुछेक देशों में मौद्रिक नीति के साथ हितों के टकराव से बचने के लिए पर्यवेक्षण का दायित्व केन्द्रीय बैंक से अलग कर दिया गया है। वित्तीय सेवा प्रदाताओं के बीच भेदों की समाप्ति तथा वित्तीय संगुटों के उद्भव के प्रत्युत्तर में कुछेक देशों में एकल विनियामक दृष्टिकोण अपना लिया गया है। कुछेक अन्य देशों (उदाहरण के लिए आस्ट्रेलिया) ने उद्देश्य - आधारित विनियमन को अंगीकृत कर लिया है। दुर्लभ पर्यवेक्षी संसाधनों में मितव्ययिता लाने हेतु बाज़ार अनुशासन पर वर्धित बल दिया जा रहा है। बाज़ारों और प्रतिपक्षियों को अनुशासनिक एजेन्टों के रूप में कार्य करते हुए अतिरिक्त जोखिम लेने पर बेहतर नियंत्रण रखने की अनुमति प्रदान करने हेतु प्रकटन पर भी अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। पर्यवेक्षक किसी वित्तीय फर्म के व्यवसाय के सभी पहलुओं का मूल्यांकन करने तथा केवल विनियामक मानदंडों का अनुपालन सुनिश्चित करने के बजाय जोखिम के बहुविध स्रोतों का पूर्वानुमान लगाने का प्रयास कर रहे हैं। तीव्र गति से विकासरत वित्तीय क्षेत्र तथा विनियामक निकायों की निरंतर विस्तृत होती नियम-पुस्तिकाओं ने यू.के. जैसे कुछ देशों को सिद्धांत-आधारित पर्यवेक्षण अंगीकृत करने पर विवश कर दिया है।

11.47 अमरीकी सब-प्राइम संकट के परिणामस्वरूप वैश्विक वित्तीय बाज़ारों में हुई हाल की घटनाओं ने बैंकिंग उद्योग के कतिपय विनियामक और पर्यवेक्षी पहलुओं पर पुनर्चिंतन का आह्वान कर दिया है। पहला, एक अनसुलझा मुद्दा है असामान्य परिस्थितियों में चलनिधि के दबावों का सामना किस प्रकार किया जाए। दूसरा, इस बात पर भी बहस की जा रही है कि कहीं पूंजी आवश्यकताओं की 'प्र-चक्रीयता' उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति के साथ मिलकर एक ऐसा कारक तो नहीं बन गई है जो उत्कर्ष (तेजी) और निपात (गिरावट) के प्रभाव को बढ़ा देते हैं। तीसरा, जटिल उत्पादों का विनियमन और व्युत्पन्नियों पर निगरानी एक अन्य मुद्दा है। चौथा, वित्तीय प्रणाली में बैंकेतर संस्थाओं की भूमिका की भी विनियामक परिप्रेक्ष्य में जाँच की जा रही है। पाँचवाँ, इस बात पर बहस की जा रही है कि क्या संस्थाओं को इतना बड़ा और इतना जटिल होने देना चाहिए कि उनकी समस्याओं का प्रणाली-व्यापक प्रभाव हो। रिज़र्व बैंक विश्व भर के बैंकिंग पर्यवेक्षण में अद्यतन प्रवृत्तियों पर इस दृष्टि से नज़र रखे हुए है कि भारत के बारे में उनकी प्रासंगिकता क्या होगी।

11.48 अन्य बैंक पर्यवेक्षकों की भांति ही रिज़र्व बैंक भी विनियामक एवं पर्यवेक्षी ढांचे में आवश्यक परिवर्तन करते हुए पूरी सक्रियता से वित्तीय प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों के प्रति विनियामक रेस्पांड कर रहा है। बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने और उसे अधिकाधिक परिचालनात्मक लोच प्रदान किए जाने के उद्देश्य से विवेकसम्मत तत्त्वों के आधार पर व्यष्टि विनियमन के स्थान पर समष्टि प्रबंधन के रूप में बदलाव आया है। वैश्वीकरण और उदारीकरण, वित्तीय नवोन्मेषों और प्रौद्योगिकीय उन्नतियों तथा बढ़ते वित्तीय संगुटन से पैदा होने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक व्यवस्थाएं भी की गई हैं।

11.49 आने वाले वर्षों में यह सुनिश्चित करना एक महत्त्वपूर्ण चुनौती होगी कि वित्तीय संगुटों का पर्याप्त रूप में विनियमन हो। वित्तीय संगुटों की निगरानी की विद्यमान व्यवस्था की कुछ सीमाएं हैं, यद्यपि अन्तर-विनियामक विचार-विमर्शों एवं सहयोग के माध्यम से समूह-व्यापी परिप्रेक्ष्य अपनाए जाने के प्रयास किए जा रहे हैं। ई-फाइनेन्स उत्पादों के बढ़ते उपयोग से बैंकों के समक्ष कुछेक जोखिम उपस्थित हो रहे हैं, जिनके लिए उपयुक्त सुरक्षोपायों की आवश्यकता होगी।

कुछ अंतिम अनुचिंतन

11.50 उक्त रिपोर्ट में संसाधन संग्रहण के प्रबंधन, जोखिम एवं पूंजी प्रबंधन, बैंकों के उधार देने और निवेश परिचालनों, वित्तीय समावेशन, समेकन और प्रतिस्पर्धा, कार्यकुशलता, उत्पादकता, वित्तीय सुदृढ़ता और विनियामक एवं पर्यवेक्षी चुनौतियों जैसे भारतीय बैंकिंग के विविध पहलुओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इस विश्लेषण का प्रयास 18वीं शताब्दी की शुरुआत में हुए भारतीय बैंकिंग उद्भव की पृष्ठभूमि में किया गया है, जिसमें स्वातंत्र्योत्तर काल पर विशेष बल दिया गया है । उक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली समय-समय पर कतिपय ढांचागत परिवर्तनों से गुजरी है। भारत के पास अब एक सुविकसित बैंकिंग की आधारभूत सुविधा, सहायक विनियामक वातावरण

और वित्तीय रूप से सुदृढ़ पर्यवेक्षी प्रणाली उपलब्ध है। बैंक कार्य-कुशल और वित्तीय रूप से सुदृढ़ हो गए हैं, जो उन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ बैंकों की तुलना में ला खड़ा कर देता है। भारत के बैंक पिछले कुछेक वर्षों में हुई भारी वृद्धि से लाभान्वित हुए हैं, जिसने उन्हें सुदृढ़ वित्तीय कार्य-निष्पादन दर्शाने में सक्षम बनाया है। बैंकों ने बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा का प्रत्युत्तर विद्यमान कारोबारों की असंघटित (अभिग्रहण) और संघटित वृद्धि के माध्यम से विविधीकरण और विस्तार द्वारा दिया है। जहां कुछेक परिवर्तन अन्तर्जात कारकों द्वारा प्रवर्तित थे, वहीं अन्य बहिर्जात कारकों के कारण हुए अर्थात् वे वैश्विक घटनाओं के अंग थे। प्रौद्योगिकीय विकास संभवतः एकमात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बहिर्जात कारक था, जिसने बैंकिंग प्रणाली को प्रभावित किया। दूसरी ओर अन्तर्जात परिवर्तन विलयनों, अभिग्रहणों, वित्तीय सेवाओं के प्रदाताओं के बीच विभेदों की समाप्ति और वित्तीय संगुटों के आविर्भाव के रूप में हुए। जबकि बैंक परिवर्तित परिवेश से सामंजस्य बिठाने में समर्थ रहे हैं, तीव्र गति से विकसित होता भू-दृश्य भविष्य में भी कतिपय चुनौतियां उपस्थित करता रहेगा।

11.51 तीव्र गति से बदलते वित्तीय भू-दृश्य का अंतिम परिणाम बैंकिंग उद्योग के भीतर तथा बैंकेतर संस्थाओं दोनों से ही बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा होगा। अपेक्षाकृत अधिक स्तर वाली प्रतिस्पर्धा के कारण मार्जिनों पर दबाव पड़ सकता है, जो बैंकों की लाभप्रदता को अतिक्रमित कर देता है। अतएव बैंकों के लिए लागत पक्ष को पुनर्व्यवस्थित करने की आवश्यकता होगी। अधिक परिचालन लागत और कार्य-कलापों का विविधीकरण कुछेक ऐसे पहलू होंगे, जिन पर बैंकों के लिए आगामी वर्षों में प्रतिस्पर्धात्मक और लाभदायक बने रहने के लिए ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता होगी। बैंकों के लिए यह भी आवश्यक होगा कि वे अपनी निविष्टियों को बेहतर ढंग से संयोजित करें, ताकि उत्पादकता और कार्यकुशलता बढ़ाई जा सके। परिचालन लागत में कमी लाने और अपेक्षाकृत अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रौद्योगिकी की गहनता में वृद्धि महत्त्वपूर्ण होती है। हालांकि, सूचना प्रौद्योगिकी का व्यवहार करते समय उपयुक्त सुरक्षा और प्रणाली की अखंडता, आपदा निवारण प्रबंधन तथा कारोबार सातत्य आयोजनाओं सहित कुछेक महत्त्वपूर्ण कारकों का निराकरण किए जाने की आवश्यकता होगी। सूचना प्रौद्योगिकी प्रणालियों में संसाधित एवं भंडारित डेटा की अखंडता को बैंकों द्वारा हर समय सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता होती है तथा तत्काल प्रतिकृति सहित पर्याप्त बैकअप की व्यवस्था की जानी आवश्यक होती है। इसकी व्यापक रूपरेखा ''वित्तीय क्षेत्र प्रौद्योगिकी विजन प्रलेख (2008-10)'' में पहले से उपलब्ध कराई जा चुकी है। यद्यपि अनर्जक देयताओं को नियंत्रित रखने की दृष्टि से भारतीय बैंकों ने अत्यधिक रूप से उत्कृष्ट कार्य किया है तथापि, आस्ति की गुणवत्ता बनाए रखने का कार्य बैंकों के समक्ष निरंतर चुनौती बना रहेगा।

11.52 बैंकों को पूंजी बाज़ार की ओर से बढ़ी हुई स्पर्धा उपस्थित होने की आशा है। जनसांख्यिकी में हो रहे परिवर्तनों से ग्राहकों की वित्तीय आवश्यकताएं बदल जाएंगी, जिसका प्रभाव उत्पादों और वितरण चैनलों पर पड़ने वाला है। भारत में निर्भरता अनुपात में आगामी कुछेक वर्षों में कमी आने की संभावना है। अधिक वित्तीय धन और युवा आबादी के अधिक अनुपात के साथ, परिवार उनकी वरीयता को अपेक्षाकृत अधिक जोखिम वाली आस्तियों की ओर बदलने हेतु प्रवृत्त होंगे और उसके फलस्वरूप बैंकों में जमाराशियां रखने के बजाय अन्य अधिक जोखिमपूर्ण, अधिक प्रतिलाभ वाले उत्पादों में निवेश करने जैसा बदलाव आएगा। इस प्रकार, भविष्य में अमध्यस्थीकरण की प्रक्रिया में और अधिक गति आएगी, जिसके द्वारा उधारकर्ता बैंकों की अनदेखी करेंगे तथा सीधे पूंजी बाज़ारों से वित्त प्राप्त करेंगे। बैंकिंग उद्योग के समक्ष यह चुनौती उपस्थित होगी कि वे प्रतिस्पर्धी उत्पाद एवं सेवाएं उपलब्ध कराएं और यदि वे वैसा करने में असफल होते हैं, तो वे अपने बाज़ार अंश अन्य खंडों को खो बैठेंगे। समग्र जमा संग्रहण प्रभावित नहीं हो सकता, क्योंकि जैसा कि निकट अतीत में देखने में आया था कि अन्ततोगत्वा यह धन कॉरपोरेट कंपनियों/पूंजी बाज़ार के मध्यवर्तियों से चालू/बचत जमा राशियों के रूप में बैंकिंग प्रणाली के पास ही वापस आएगा। इससे उधार लेने की लागत में भी कमी आ सकती है क्योंकि इस प्रकार की जमाराशियां कम जोखिम संवेदी और कम खर्चीली होती हैं। हालांकि, बैंकों को निधीयन के एक स्थिर स्रोत से वंचित होना पड़ेगा तथा जब तक कि आस्ति पक्ष भी पुनर्व्यवस्थित नहीं हो जाता अपने आप को एक गंभीर आस्ति-देयता असंतुलन के प्रति एक्सपोज करना होगा।

11.53 एटीएम, इंटरनेट और मोबाइल फोन जैसी प्रौद्योगिकी पर आधारित सेवाओं के उपयोग को और अधिक प्रधानता प्राप्त होने की संभावना है। इससे प्रतिस्पर्धा के गहन होने की भी आशा है। प्रतिस्पर्धा में आवश्यक रूप से बैंकों की भौतिक उपस्थिति अपेक्षित नहीं होती, अपितु केवल यह कि वे संपूर्ण बाज़ार का मुक्त रूप से संचालन करने में समर्थ हों। चूंकि बैंकों के आकार में वृद्धि होती है तथा वे बहुविध बाज़ारों में परिचालन करते हैं, उनकी पहुँच गैर-जमा देयताओं तक भी हो सकती है। यदि नॉर्दन रॉक का हाल का अनुभव कोई निर्देश हो सकता है, तो बैंकों के लिए गैर-जमा देयताओं पर अत्यधिक निर्भरता से बचना आवश्यक होगा। बैंकों के इस प्रकार की देयताओं का आश्रय लेने पर विवश होने की स्थिति में, वह विवेकसम्मत सीमाओं के भीतर होनी चाहिए और इस प्रकार के उधारों से उद्भूत होने वाली जोखिमों का प्रबंधन करने हेतु उपयुक्त उपाय भी किए जाने आवश्यक होंगे।

11.54 भारतीय बैंकिंग प्रणाली में विलयनों एवं अभिग्रहणों की प्रक्रिया, जिसमें 1999 से तेज़ी आ गई है, के और अधिक बढ़ने की आशा है। यह महत्त्वपूर्ण है कि भविष्य में बैंकिंग प्रणाली में विलयन एवं अभिग्रहण संभवतः उस स्थिति को छोड़कर, जहाँ प्रणालीगत संकट विद्यमान हो, सरकार या विनियामक द्वारा प्रेरित न होकर बाज़ार-प्रवर्तित तथा वाणिज्यिक कारणों पर आधारित हों (रेड्डी, 2004)। यद्यपि सरकारी क्षेत्र वाले बैंकिंग खंड, जिसका बैंकिंग प्रणाली की कुल आस्तियों में काफी बड़े अंश पर कब्जा है, में समेकन अब भी कार्य प्रगति पर वाली स्थिति में है, तथापि सरकारी क्षेत्र के बैंकों के संबंधित कानूनों में इस प्रयोजन हेतु समर्थकारी

कानूनी प्रावधान विद्यमान हैं। भविष्य में समेकन की प्रक्रिया सीमा-पार का आयाम भी ले सकती है।

11.55 हाल की प्रवृत्तियों से यह भी पता चलता है कि भविष्य में प्रौद्योगिकी विकासों और वित्तीय नवोन्मेषों के कारण समग्र जटिलता और उन जोखिमों में वृद्धि होगी, जिनके प्रति बैंकिंग प्रणाली एक्सपोज हो सकती है । अत: हाल के वर्षों की ही भांति ध्यान का केन्द्र बैंकिंग प्रणाली की सुरक्षा और वित्तीय स्थिरता के सुदृढ़ीकरण पर स्थिर रहना चाहिए, ताकि वर्धित प्रतिस्पर्धा और अधिकाधिक कार्य-कुशलता के लाभों का पूरी तरह से उपयोग किया जा सके । दूसरे शब्दों में, बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा एवं कार्य-कुशलता को बढ़ाने के लिए परिवर्तनों को प्रणाली की बढ़ी हुई सुरक्षा एवं वित्तीय सुदृढ़ता द्वारा संतुलित रखे जाने की आवश्यकता है । विनियामक अथवा पर्यवेक्षक के बजाय बैंक अपने आप ही अपने कार्य-निष्पादन एवं वित्तीय स्थिति के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं । बढ़ती जटिलता को ध्यान में रखते हुए संस्थागत स्तर पर जोखिम माप और जोखिम प्रबंधन तथा बैंकों में अभिशासन की परंपराओं को कार्य-सूची में सर्वोपरि स्थान दिए जाने की आवश्यकता है । मुख्य चुनौती उन अवसरों का लाभ उठाने की होगी, जो जोखिमों का प्रबंधन करते समय पैदा होंगे ।

11.56 रिज़र्व बैंक ने भारत में बैंकों के विनियमन एवं पर्यवेक्षण को एक परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से देश - विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के विशेष प्रयोजन हेतु निर्देशित करते समय हमेशा यह प्रयास किया है कि उन्हें वैश्विक उत्तम परंपराओं के अनुरूप रखा जाए । इस व्यवस्था ने अच्छी तरह काम किया है और इसे भविष्य में भी जारी रखे जाने की आवश्यकता है । हालांकि, आगे बढ़ते हुए रिज़र्व बैंक को वित्तीय संगुटों का यथोचित रूप से विनियमन किए जाने जैसे कुछेक जटिल मुद्दों का निराकरण करना होगा । अंतरराष्ट्रीय बैंकों की सीमा-पार उपस्थिति से उठने वाले घरेलू मेजबान मुद्दों का भी निराकरण किया जाना होगा ।

11.57 हाल की वैश्विक वित्तीय हलचल से यह पता चला है कि अत्यधिक दबाव वाली स्थितियों में चलनिधि की कमियां निधीयन की कमियों तक विस्तारित हो सकती हैं, जिससे बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की शोध - क्षमता प्रभावित हो सकती है । वैश्विक स्तर पर, केन्द्रीय बैंकों ने इन दोनों ही कमियों का निराकरण विविध प्रकार की पहलकदमियों के माध्यम से किया है । वैश्विक वित्तीय बाज़ारों में हुई हलचल की पृष्ठभूमि में पर्यवेक्षकों को कतिपय मुद्दों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे कि विवेकसम्मत पर्यवेक्षण, चलनिधि एवं जोखिम प्रबंधन को सुदृढ़ करना, पारदर्शिता और मूल्य-निर्धारण को बढ़ाना, क्रेडिट रेटिंग की भूमिका और उपयोग में परिवर्तन लाना, जोखिम के प्रति प्राधिकारियों की प्रत्युत्तरदायिता को सुदृढ़ बनाना तथा वित्तीय प्रणाली में दबाव से निपटने हेतु सुदृढ़ व्यवस्था को कार्यान्वित करना। वित्तीय बाज़ार की हाल की घटनाओं ने भी कतिपय मुद्दों और चिन्ताओं को जन्म दिया है। पहला, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आकलन के अनुसार अतीत की घटनाओं के अनुभव विद्यमान अभूतपूर्व स्थिति के लिए अधिक मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं करा सकते, क्योंकि वित्तीय प्रणाली के जुड़वा वाहक (इंजिन) अर्थात् बैंकिंग प्रणाली और प्रतिभूति बाज़ार, दोनों ही एक साथ लड़खड़ा रहे हैं। दूसरा जबकि, नवोन्मेषी ऋण लिखतों के बढ़े हुए उपयोग की परंपरा और जोखिम विसरण की जटिल परतबंदी ने सूचना लागत में कमी ला दी है, उन्होंने निवेशक या जोखिम वाहक को अंतिम उधारकर्ताओं, जहां वास्तविक जोखिम रहते हैं, से क्रमिक रूप से अलग रहने में समर्थ बना दिया है। इस स्थिति में पूरी शृंखला में जोखिमों की पहचान करना और उनका पता लगाना अधिकाधिक चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। तीसरा, रेटिंग एजेन्सियों की भूमिका की भी जाँच-पड़ताल की जा रही है। चौथा, बीमाकर्ताओं, जो बाण्डों से संबंधित भुगतानों की गारंटी देते हैं, की शक्ति और विश्वास में भी कमी आ रही है। पांचवां, वित्तीय उत्पादों और बाज़ारों की वर्धित जटिलता विनियामकों एवं पर्यवेक्षकों के समक्ष बाज़ारों और संस्थाओं के सामने उठने वाली जोखिमों के अनुरूप कार्रवाई करने की अधिकाधिक चुनौतियां प्रस्तुत कर रही है। छठा, वित्तीय बाज़ार की हाल की घटनाओं से प्राप्त होने वाली महत्त्वपूर्ण शिक्षा यह है कि फोकस इस बात पर नहीं होना चाहिए कि अशांति को किस तरह नियंत्रित किया जाए, अपितु इस बात पर होना चाहिए कि इन व्यवधानों के विशिष्ट स्रोतों की परवाह किए बिना वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए अपेक्षाकृत दीर्घकालिक आधार पर कौन-सी नीतियां लागू की जाएं। ये मुद्दे उन चुनौतियों की ओर संकेत करते हैं, जो वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा और सुदृढ़ता को परिरक्षित करने की दिशा में आगे आने वाली हैं ।

11.58 निकटवर्ती अवधि में बैंकिंग और वित्तीय नीतियों में नवोन्मेष हेतु की जाने वाली पहल को रोके बिना बैंकिंग प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ बनाने पर अधिक से अधिक बल दिया जाना आवश्यक होगा। आने वाली स्थितियों के अनुरूप विनियामक और पर्यवेक्षी ढांचे में निरंतर परिष्करण और सुदृढ़ीकरण आवश्यक होगा। सभी श्रेणियों के बैंकों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के अलावा, वर्धित ऋण सुपुर्दगी, सहायक ऋण संस्कृति, ग्राहक सेवा और वित्तीय समावेशन पर भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की भविष्य की कार्य-सूची में प्रमुखता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता होगी।